THE ECONOMIC TIMES

Date: 30-07-19

A Welcome New Life for LIC of India

ET Editorials

The government's reported move to list State-owned Life Insurance Corporation of India (LIC) is welcome. It would unlock shareholder value, make accounting transparent, raise corporate governance and help the business grow. The proposed plan is to sell a small stake through an initial public offering (IPO) and later dilute the government's holding. This makes eminent sense. LIC's huge embedded value would help to shore up disinvestment receipts and create an actual level playing field in insurance.

With assets under management of about Rs 31 lakh crore, LIC accounts for two-thirds of the industry's new business premium. The government must amend the LIC Act to convert the corporation into a company ahead of the IPO, on par with other insurers. That entails withdrawing the State guarantee on LIC policies, leaving it to regulation and a competitive market to ensure that LIC honours its commitment to the consumer. Insurance gobbles up capital: prudential norms call for insurers to increase their capital as premium collections go up. LIC's paid-up capital was raised to Rs 100 crore from a mere Rs 5 crore to bring it on par with private insurance players. Listing will enable LIC to raise money from the market and finance its growth.

The big daddy of all insurers has massive investments in corporate bonds. Its increasing exposure to shares of State-owned firms — with successive governments harnessing LIC to support the disinvestment programme — is worrisome. Enhanced public disclosures from listing will make it difficult for any government to meddle in LIC's working. For LIC to achieve high levels of reporting transparency and focus mainly on policyholders' long-term returns, asset managers' compensation should be aligned with performance in the long term.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 30-07-19

कृषि सुधार

संपादकीय

कृषि की दिशा और दशा में परिवर्तन लाने के लिए गठित मुख्यमंत्रियों की समिति की पहली बैठक में केंद्रीय कोष के आवंटन को राज्यों के कृषि क्षेत्र सुधार के साथ जोड़ने का जो प्रस्ताव रखा गया है, उसके कई पहलू हैं जिन पर सावधानीपूर्वक विचार के बाद ही अंतिम निर्णय लिया जाना चाहिए। यह सही है केंद्र द्वारा शुरू किए गए कुछ अच्छे और सुविचारित कृषि क्षेत्र सुधार, इसलिए आगे नहीं बढ़ सके क्योंकि राज्यों ने उनमें रुचि नहीं ली। वहीं इसे मसला बनाकर धन नहीं देना महंगा भी पड़

सकता है। एक पहलू यह भी है कि ऐसा करना संघवाद की भावना के प्रतिकूल होगा। अगर राज्य केंद्र समर्थित सुधारों या पहल में इसलिए रुचि नहीं रखते हैं क्योंकि उनके पास समान लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्वयं की बेहतर योजना है तो ऐसे में धन रोकना अनुचित साबित होगा। परंतु यदि ऐसा प्रशासनिक शिथिलता और नाकामी की बदौलत होता है या फिर राजनीतिक कारणों से ऐसा किया जाता है तो उस स्थिति में कड़े राजकोषीय कदम उठाना गलत न होगा।

निश्चित तौर पर केंद्र सरकार के वित्त का सहारा लेकर राज्यों को सुधार की गति बढ़ाने के लिए कहना नया नहीं है। नीति आयोग ने भी सन 2017 में कृषि मंत्रालय को सलाह दी थी कि वह अनुदान का एक हिस्सा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अधीन कर दे और उसका भुगतान कृषि क्षेत्र के सुधारों से जोड़ दे। बहरहाल, राज्य सरकारों की नाराजगी के भय से इसका क्रियान्वयन नहीं किया गया। परंतु अगर कुछ राज्यों के मुख्यमंत्री खुद इस विचार को सही मानते हैं तो इसे आजमाने में कोई हर्ज नहीं है भले ही इसका चुनिंदा ढंग से प्रयोग किया जाए। शुरुआत में कृषि विपणन, जमीन की पट्टेदारी लीजिंग, अनुबंधित कृषि, फसल बीमा और कृषि ऋण के क्षेत्र में इसकी शुरुआत की जा सकती है।

केंद्र के कृषि संबंधी एजेंडे में राज्यों की रुचि जगाने का एक और तरीका है, हालांकि उसका क्रियान्वयन थोड़ा कठिन है। इसके अनुसार कृषि को संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत राज्य सूची से निकालकर अनुवर्ती सूची में डाला जा सकता है। इससे केंद्र सरकार को कृषि विकास में अपेक्षाकृत बड़ी और निर्णायक भूमिका निभाने का अवसर मिलेगा। ऐसा करने से राज्य सरकारों के अधिकारों का भी हनन नहीं होगा। कृषि की स्थिति में ऐसे सांविधिक बदलाव की अनुशंसा एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय किसान आयोग ने भी सन 2006 में अपनी पांचवीं और अंतिम रिपोर्ट में की थी। दलवाई समिति ने सन 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने संबंधी जो रिपोर्ट सितंबर 2018 में प्रस्तुत की उसमें भी कृषि विपणन को समवर्ती सूची में रखने की वकालत की गई।

बहरहाल इसके लिए संविधान में संशोधन करना होगा जिसे संसद के दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी। इसके अलावा तय तादाद में राज्यों की के विधानसभाओं का समर्थन भी आवश्यक होगा। यह लंबी प्रक्रिया है लेकिन ऐसा करना अप्रत्याशित नहीं होगा क्योंकि अतीत में भी ऐसे संशोधन हुए हैं। शिक्षा, वन एवं वन्यजीव संरक्षण जैसे मुद्दों को सन 1976 में 42वें संविधान संशोधन के जरिये राज्य सूची से समवर्ती सूची में डाला गया था। अहम मुद्दा यह है कि कृषि क्षेत्र में आवश्यकता आधारित और जरूरी सुधारों को कैसे अंजाम दिया जाए ताकि किसानों का मुनाफा बहाल हो सके और किसानों की वित्तीय चिंताओं का अंत हो सके। ऐसे तरीके भी विकसित करने होंगे ताकि किसान अगर चाहें तो अपनी आजीविका की संभावनाओं में सुधार करने के लिए कृषि कार्य आसानी से छोड़ सकें। आशा की जानी चाहिए कि मुख्यमंत्रियों का समूह देश के कृषि क्षेत्र में नई जान फूंकने के लिए अधिक व्यावहारिक उपायों के साथ सामने आएगा।

दैनिक भास्कर

Date: 30-07-19

स्व-विवेक और दलबदल का सच खोजने की चुनौती

संपादकीय

प्रजातंत्र में सत्य खोजना भूसे के ढेर में सूई खोजने जैसा होता है खासकर तब जब समाज सत्य पर परदा डालने पर आमादा हो और दूसरी तरफ मानव-विवेक की स्वच्छंदता को प्रजातंत्र ही नहीं, सभ्य समाज का भी अपरिहार्य अंग माना जाता हो। कर्नाटक में अंततः नई सरकार बन गई। विधानसभा अध्यक्ष ने सभी 17 बागी विधायकों को दलबदल विरोधी कानून का दोषी पाया यानी वे अब अगले 46 महीने (या इस विधानसभा के जीवन काल) तक न तो चुनाव लड़ सकते हैं, न ही किसी संवैधानिक पद पर बैठ सकते हैं। उधर किसी भी जनप्रतिनिधि के स्व-विवेक को अक्षुण्ण रखने के सिद्धांत के तहत इस प्रावधान के ठीक पहले वाले प्रावधान में यह व्यवस्था है कि जो विधायक स्व-विवेक से इस्तीफा देते हैं वे दोबारा चुनाव लड़ सकते हैं और पदों पर भी बैठ सकते हैं। यह प्रावधान इसलिए किया गया कि विधायक का स्व-विवेक न मरे अगर पार्टी या उसके लीडर की नीतियों से वह इत्तेफाक नहीं रखता। यहां सवाल यह है कि वह स्पीकर हो या सुप्रीम कोर्ट की बेंच, कौन-सा बैरोमीटर अपनाएंगे, जिसे लगाते ही पता चले कि विधायक का नेतृत्व की किन नीतियों से कब वैराग्य हो गया और कब दूसरी पार्टी ने उन्हें धन-पद का लालच देकर सरकार गिराने का रास्ता पकड़ा। लेकिन स्व-विवेक का प्रावधान अगर न रखा जाए तो पार्टियां इन विधायकों को बंधुआ मजदूर समझकर पांच साल जो चाहे कर सकती हैं। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट भी आज तक स्पष्ट फैसले नहीं दे पाया, क्योंकि हर मामले में तत्कालीन परिस्थितियों का आकलन करना पड़ता है। यह सच है कि कांग्रेस और जद (एस) सरकार जनमत के विपरीत चुनाव बाद के अनैतिक (लेकिन कानूनीतौर पर वैध) गठजोड़ का नतीजा थी, लेकिन इन विधायकों को यह ब्रह्मज्ञान सालभर बाद हुआ। सिक्किम में जनता ने सिक्किम क्रांतिकारी मोर्चा को बहुमत दिया और विधायकों के बहुमत ने -जिनमें भाजपा भी शामिल है- प्रेम सिंह तमांग को मुख्यमंत्री बनाया, जबकि तमांग 2017 में भ्रष्टाचार के मामले में सालभर जेल काट चुके थे और चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य हो चुके थे। किसका विवेक गलत था जनता का या विधायकों का? अब मामला चुनाव आयोग के 'स्व-विवेक' पर है। यानी सत्य की तह तक पहुंचना एक अनैतिक समाज में किसी के लिए भी बेहद मुश्किल है, भले ही वह सुप्रीम कोर्ट हो या अन्य संस्थाएं।

Date: 30-07-19

35 ए के खात्मे से होगा कश्मीर का असली विलय

यह अनुच्छेद राष्ट्रपति के आदेश से जोड़ा गया था और उन्हीं के आदेश से इसे हटाया भी जा सकता है

विराग गुप्ता , सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता

आज़ादी के बाद भारत के संविधान में अनुच्छेद-370 के माध्यम से जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा दिया गया। इसके बाद 1954 में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आदेश से धारा 35-ए का प्रावधान जोड़ा गया, जिसके तहत मूलत: जम्मू-कश्मीर विधानसभा को राज्य के स्थायी निवासी की परिभाषा तय करने का अधिकार दिया गया था। जब 1956 में जम्मू-कश्मीर संविधान अपनाया गया तो उसमें स्थायी निवासी उसे कहा गया जो 14 मई 1954 को राज्य का निवासी

था या जो दस साल से वहां रह रहा था। अनुच्छेद के तहत स्थायी नागरिक को ही संपत्ति, रोजगार और सरकारी योजनाओं का लाभ लेने का हक दिया गया। इससे भारत के किसी अन्य राज्य का कोई नागरिक न तो वहां अचल संपत्ति खरीद सकता है और न सरकारी योजनाओं का लाभ ले सकता है।

इसे लेकर सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यह राष्ट्रपति के आदेश से लागू हुआ था और इसे संसद की मंजूरी नहीं मिली थी, जबकि इस तरह के संवैधानिक संशोधन का अधिकार केवल संसद को है। दूसरी आपत्ति यह है कि राज्य से बाहर शादी करने वाली महिलाओं के बच्चे स्थायी नागरिकता से वंचित हो जाते हैं। तीसरी आपत्ति यह है कि अन्य राज्यों के नागरिकों को रोजगार व सरकारी लाभ न मिलने का प्रावधान अनुच्छेद 14 के खिलाफ है, जिसमें कानून के समक्ष सबको समान माना गया है। जाहिर है यह अनुच्छेद समानता के खिलाफ होने के साथ महिलाओं के लिए भी भेदभावपूर्ण है। इसकी एक बानगी है शेख अब्दुल्ला के पोते और पोती का मामला। उनके पोते और पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला और उनकी पोती सारा दोनों ने राज्य के बाहर के निवासियों से विवाह किया। उमर के बच्चों को राज्य के सारे अधिकार हासिल हो गए, जबकि सारा को सम्पत्ति के अधिकार से और उसके बच्चों को राज्य की स्थायी नागरिकता के अधिकार से बेदखल कर दिया गया। 35-ए के अजब प्रावधानों की वजह से जम्मू-कश्मीर में रह रहे अनुसूचित जाति और जनजाति या कबीलों को स्थायी निवासी का लाभ नहीं मिल पा रहा है। विभाजन के समय पश्चिमी पाकिस्तान से आए तीन लाख परिवारों को 35-ए के जटिल प्रावधानों की वजह से अभी तक राज्य में स्थायी निवासी का दर्जा नहीं मिल पाया है।

दरअसल अनुच्छेद 35-ए भी भारत में राजनेताओं की प्रशासनिक जुगाड़बाजी की एक और बानगी है। आलोचकों के अनुसार 35-ए भेदभावपूर्ण और अलगाववाद को बढ़ाने वाला संवैधानिक प्रावधान है, जिसकी चर्चा हमने ऊपर की है। वहीं शाह फैसल जैसे पूर्व आईएएस अधिकारी 35-ए को हटाने को घाटी के लिए भयानक बता रहे हैं। 35-ए को हटाने की आलोचना करने वाले लोग जब कानूनी बिन्दु पर कमजोर होने लगते हैं तो कश्मीर घाटी के विशिष्ट दर्जे की बात शुरू कर देते हैं। उनमें से कई लोग देश में रह रहे गैर-कानूनी रोहिंग्याओं के मानवाधिकारों की भी बात करते हैं, लेकिन कश्मीर घाटी से पलायन करने पर मजबूर लाखों हिन्दू परिवारों के संवैधानिक अधिकारों की चर्चा नहीं होती। 35-ए को संसद की मंजूरी से हुए संविधान संशोधन के माध्यम से लागू नहीं किया गया था, फिर कई विशेषज्ञ इसे खत्म करने के लिए संविधान संशोधन की बात क्यों करते हैं? 35-ए को राष्ट्रपति के आदेश से लागू किया गया था तो फिर उसे राष्ट्रपति के आदेश से ही खत्म क्यों नहीं किया जा सकता? राष्ट्रपति को आदेश पारित करने के लिए राज्य सरकार की अनुशंसा या सहमति चाहिए, जो राज्यपाल द्वारा दी जा सकती है। 35-ए की तर्ज पर 41 अन्य आदेश भी संविधान के अनुच्छेद-370 के तहत जारी हुए हैं। 35-ए को खत्म करने के आदेश से अन्य प्रावधानों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इस बारे में भी सही पक्ष सामने नहीं आ रहा है। सर्वोच्च न्यायालय की बहस में 35-ए जैसे प्रावधानों को संवैधानिक संशोधन के माध्यम से लागू नहीं किए जाने के मसले ने अगर जोर पकड़ा तो फिर अन्य प्रावधानों पर संकट के बादल जरूर मंडरा सकते हैं। इसलिए न्यायिक हस्तक्षेप की बजाय केंद्र सरकार इस पर सुविचारित निर्णय लिया जाए, तो ऐसी संवैधानिक झंझटों से बचा जा सकता है।

जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा समाप्त होने के बावजूद कानून में बदलाव के लिए संसद और राज्य विधानसभा के पास सारे अधिकार हैं। संविधान में अनुच्छेद-370 को अस्थायी और तात्कालिक प्रावधान लिखे जाने के बावजूद, इसे कैसे अपरिहार्य बताया जा सकता है। संसद द्वारा नए राज्यों का गठन और पुनर्गठन किया जा सकता है, तो फिर जम्मू-कश्मीर के संवैधानिक दर्जे में बदलाव क्यों नहीं किया जा सकता? सवाल यह है कि राज्य के निवासियों और देश के नागरिकों के बीच भेदभाव को संविधान के किस प्रावधान के तहत जायज ठहराया जा सकता है? देश में जम्मू-कश्मीर के

साथ कई अन्य राज्यों के निवासियों को विशिष्ट संवैधानिक सुरक्षा दी गई है, लेकिन वह अलगाववाद का हथियार नहीं है। 35-ए को खत्म करने के बाद अनुच्छेद-370 के तहत जारी अन्य आदेशों को सुसंगत तरीके से हटाने की जरूरत है। इससे राज्य के निवासियों का विशिष्ट दर्जा बनाए रखने के साथ अलगाववादियों पर भी लगाम लग सकेगी। धारा 35-ए को हटाने और अनुच्छेद-370 की समाप्ति को एक साथ जोड़ने के उत्साह में हुई संवैधानिक गड्डमड्ड, देश के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। जम्मू-कश्मीर की समस्या के सामरिक और अंतरराष्ट्रीय आयामों पर तभी नियंत्रण होगा जब राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में इस पर संवैधानिक सहमति बन सके।

एक रिपोर्ट के अनुसार जम्मू-कश्मीर में देश की एक फीसदी आबादी रहती है, लेकिन राज्य को 10 फीसदी से ज्यादा केंद्रीय मदद मिलती है। राज्य की कुल आमदनी का 54 फीसदी केंद्र सरकार से मिलता है। वर्ष 2000 से 2016 के दौरान जम्मू-कश्मीर को केंद्र से लगभग 1.14 लाख करोड़ रुपए की निधि मिली। ऐसी बेहिसाब केंद्रीय मदद हमेशा जारी नहीं रह सकती और इससे राज्य के आर्थिक विकास में ज्यादा फर्क भी नहीं पड़ता। असली विकास के लिए निजी क्षेत्र से निवेश हासिल करने के लिए अब भारत के अन्य क्षेत्रों के लोगों को राज्य में आवाजाही की स्वतंत्रता देनी होगी, जो उनका संवैधानिक हक भी है। 35-ए हटने से आर्थिक विकास के इस चक्र की शुरुआत हो सकती है, जिससे सही मायने में जम्मू-कश्मीर भारत की मुख्य धारा में शामिल होगा।

नईदुनिया

Date: 30-07-19

रोजगार बढ़ाए बिना नहीं गुजारा

यदि हम अपनी मौजूदा श्रमशक्ति को वास्तव में कामकाजी बना सके तो देश की आर्थिक प्रगति रफ्तार पकड़ सकती है।

डॉ. भरत झुनझुनवाला , (लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं आईआईएम, बेंगलुरु के पूर्व प्रोफेसर हैं)

देश की जनसंख्या को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो कामकाजी यानी कार्यशील और दूसरी आश्रित। 15 वर्ष से कम एवं 65 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति आश्रित वर्ग में गिने जात हैं, जबकि 15 से 65 वर्ष की उम्र के लोगों को कामकाजी वर्ग में रखा जाता है। आश्रित एवं कामकाजी लोगों के अनुपात को आश्रित अनुपात कहा जाता है। जैसे आश्रितों की संख्या 60 हो और कामकाजी लोगों की संख्या 40 हो तो आश्रित अनुपात 1.5 होता है। आश्रित अनुपात के अधिक होने का अर्थ है कि आश्रितों की संख्या अधिक है और तदनुसार कामकाजी लोगों के ऊपर आश्रितों को रोटी, कपड़ा और मकान उपलब्ध कराने का बोझ अधिक है। इसके उलट आश्रित अनुपात कम होने का अर्थ है कि आश्रितों की संख्या कम है और कामकाजी लोगों द्वारा अपनी आय का उपयोग अन्य मदों में किया जा सकता है।

1950 के पहले भारत में गरीबी बहुत ज्यादा फैली हुई थी। तब जनसंख्या आज की तुलना में कम थी, परंतु आश्रितों और कामकाजी लोगों की स्थिति में संतुलन था। इसके बाद चिकित्सा क्रांति आई और बाल मृत्यु दर में गिरावट आई।

फलस्वरूप आश्रित बच्चों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। आश्रित अनुपात बढ़ गया। कामकाजी लोगों द्वारा अर्जित आय का अधिकाधिक हिस्सा आश्रित बच्चों को भोजन-पानी आदि उपलब्ध कराने में व्यय होने लगा और वे उन्हें समुचित शिक्षा उपलब्ध नहीं करा सके। लिहाजा आबादी बढ़ी, किंतु शिक्षा के स्तर में समानांतर वृद्धि नहीं हो सकी।

1970-80 के दशक में जनसंख्या नियंत्रण का प्रचार हुआ। 1991 के बाद हमारी जनसंख्या धीरे-धीरे नियंत्रण में आने लगी। इसी समय पूर्व में जो बच्चे पैदा हुए थे और जो अब तक आश्रित वर्ग में गिने जाते थे, वे युवा हो गए। वे आश्रित वर्ग से हटकर कामकाजी वर्ग का हिस्सा बन गए। इस प्रकार 1991 या 2001 के बाद कामकाजी लोगों की संख्या में भारी वृद्धि हुई जबकि आश्रित बच्चों की संख्या तुलनात्मक रूप से स्थिर रही या उसमें गिरावट आई और इससे आश्रित अनुपात में गिरावट आई।

आने वाले समय में परिस्थिति फिर पलटी खाएगी। 2001 के बाद से जिन कामकाजी लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है वे लगभग 2051 के बाद वृद्ध हो जाएंगे। उसी समय फिलहाल जो कम संख्या में आश्रित बच्चे हैं, वे कामकाजी वर्ग का हिस्सा बन जाएंगे। वयस्क होने पर वे बच्चे भी कम ही पैदा करेंगे। इस प्रकार 2051 के बाद आश्रित बच्चों की संख्या कम होगी, कामकाजी लोगों की संख्या घटेगी, लेकिन आश्रित वृद्धों की संख्या में वृद्धि होगी। उस स्थिति में पुन: आश्रित अनुपात बढ़ जाएगा। चौथे चरण में आश्रितों की संख्या में पुन: गिरावट आएगी जब उनका जीवन समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार अनुपात एक लहर की तरह बढ़ता-घटता है। प्रथम चरण में आश्रित बच्चों की संख्या बढ़ती है और लहर शुरू होती है। इसी समय आश्रित अनुपात बढ़ता है। उसके बाद दूसरे चरण में लहर आगे बढ़ती है और ये बच्चे व्यस्क हो जाते हैं और कामकाजी लोगों की संख्या बढ़ती है। तब आश्रित अनुपात घटता है। तीसरे चरण में ये कामकाजी लोग बूढ़े हो जाते हैं और आश्रित वृद्धों की संख्या बढ़ती है। आश्रित अनुपात पुन: बढ़ता है। चौथे चरण में यह लहर समाप्त हो जाती है और आश्रित अनुपात सामान्य हो जाता है। स्पष्ट होता है कि लहर के दूसरे चरण में केवल एक बार आश्रित अनुपात एक सीमित समय के लिए कम होता है। यह वह स्वर्णिम समय होता है, जब हमारे पास कामकाजी लोगों की संख्या अधिक और आश्रितों की संख्या कम होती है।

इस स्वर्णिम समय का यदि हम सदुपयोग कर लें और श्रमशक्ति को वास्तव में कामकाजी बना दें तो देश की आर्थिक प्रगति रफ्तार पकड़ सकती है। इस समय अधिक संख्या के वयस्कों द्वारा कम संख्या के आश्रित बच्चों को शिक्षा और स्वास्थ्य उपलब्ध कराया जा सकता है और बचत एवं निवेश किया जा सकता है, लेकिन यह सुनहरी संभावना तब ही फलीभूत होगी, जब कामकाजी आयु के लोग वास्तव में कार्यशील होंगे यानी उन्हें रोजगार उपलब्ध होगा। इसमें 16 वर्ष का युवा भी श्रमशक्ति का हिस्सा होगा, लेकिन यदि उसके पास रोजगार नहीं है तो वास्तव में वह आश्रित ही माना जाएगा। वह परिवार के अन्य कामकाजी लोगों पर उसी तरह आश्रित है जैसे 15 वर्ष से कम आयु के बच्चे। यदि श्रमशक्ति में शामिल लोगों को रोजगार न मिला तो हमारी बढ़ी हुई कामकाजी तबके की जनसंख्या लाभप्रद होने के स्थान पर नुकसानदेह हो जाएगी। परिवार के शेष सदस्यों पर आर्थिक बोझ बढ़ेगा। वे अपराधों में भी लिप्त हो सकते हैं। इससे देश की आय में पुन: गिरावट आएगी।

नेशनल सैंपल सर्वे ने कहा है कि 2018 में देश की बेरोजगारी दर छह प्रतिशत पर थी जो बीते 45 वर्षों में उसका उच्चतम स्तर था। वर्ष 2012 और 2018 के बीच लगभग दो करोड़ रोजगार घटे। यह आंकड़ा चिंताजनक है। एक तरफ हम आश्रित अनुपात कम होने एवं कामकाजी आबादी की संख्या बढ़ने के स्वर्णिम समय में प्रवेश कर रहे हैं और दूसरी तरफ देश में बेरोजगारी बढ़ रही है। यानी कार्यशील वर्ग के लोग बड़ी संख्या में आश्रित बनकर देश के लिए नुकसानदेह

बन रहे हैं। ऐसे में जरूरी है कि देश में **जल्द** से जल्द रोजगार उत्पन्न् किए जाएं, जिससे श्रमशक्ति में शामिल लोग उत्पादक कार्यों में लग सकें।

अक्सर सुझाव दिया जाता है कि श्रम सघन विनिर्माण को बढ़ावा दिया जाए। मेरे आकलन में यह सफल नहीं होगा, क्योंकि विनिर्माण में लगातार ऑटोमेटिक **मशीनों** का उपयोग बढ़ता जा रहा है और भविष्य **में** रोबोट से बड़े पैमाने पर काम लिया जाएगा। इस प्रकार विनिर्माण **में** बड़ी संख्या में रोजगार सृजन की संभावना कम है। दूसरा सुझाव दिया जाता है कि कृषि को बढ़ावा दिया जाए। मेरे **ख्याल** से यह भी उतना सफल नहीं होगा, क्योंकि **आर्थिक** दृष्टि से कृषि पराभव की ओर है। देखा भी गया है कि आर्थिक **विकास** के साथ-साथ देशों की आमदनी में कृषि का **हिस्सा** घटता जाता है। देश की आजादी के समय जीडीपी में कृषि का हिस्सा लगभग 50 प्रतिशत था जो आज घटकर 16 प्रतिशत रह गया है। अमेरिका जैसे विकसित देशों की आय में **कृषि** का हिस्सा एक प्रतिशत से भी कम है। ऐसे **में** किसी ढलते क्षेत्र में यदि हम अधिक रोजगार बना भी लें तब भी लोग गरीबी के दुष्चक्र में फंसे रहेंगे। हमारे सामने **एकमात्र** उपाय है कि हम सेवा क्षेत्र पर ध्यान दें। हम विदेशियों को देश **में** लाकर स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाएं प्रदान कर सकते हैं, पर्यटन करा सकते हैं, सिनेमा और संगीत बना सकते हैं। हम तमाम सेवाओं को ऑनलाइन विश्व को प्रदान कर सकते हैं- जैसे ट्यूशन देना, अनुवाद करना, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी देना, कंप्यूटर गेम्स बनाना आदि। हमें सेवा **क्षेत्र** को तत्काल बढ़ावा देना चाहिए, जिससे आश्रित अनुपात के वर्तमान में गिरते स्तर का स्वर्णिम अवसर हमारे हाथ से **निकल** न जाए।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 29-07-19

बनावटी बुद्धिमता की चुनौती !

डॉ. दर्शनी प्रिय

कृत्रिम बुद्धि यानी मशीनों द्वारा प्रदर्शित **बुद्धिमत्ता।** पिछले एक दशक में आर्टिफिशियल **इंटेलिजेंस** (एआई) के अनुप्रयोग ने सेवा से लेकर मनोरंजन, शिक्षा, **स्वास्य**, वाणिज्य, परिवहन, डिजिटल नेटवर्क, **नेविगेशन**, वाहन, निगरानी जैसे अनुप्रयोगों पर एकाधिकार जमा लिया है। दरअसल, एआई में बनावटी बुद्धि के जरिये रोबोट या कम्प्यूटर में मनुष्यों जैसी बुद्धि डालने की कोशिश की जाती है ताकि उन्हें तयों को समझने एवं विचारों पर अपनी प्रतिक्रिया देने आदि के लिए सक्षम बनाया जा सके। अक्सर इसे मनुष्य की बौद्धिक प्रक्रियाओं के साथ विकसित होने वाली पण्राली के साथ सहबद्ध किया जाता है, जिसमें इंसानी खूबी के साथ तर्क करने की क्षमता, अर्थ की खोज या पिछले अनुभव से सीख सहित निर्णय लेने, जटिल कार्य करने, **समस्या** हल करने, भाषांतरण करने और बोली की पहचान जैसी विशेषताएं शामिल है।

1950 के दशक के आस-पास विकसित इस कृत्रिम प्रज्ञा की लोकप्रियता और **व्यावसायिकता** का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसी के जरिये एक समय में सर्वकालिक महान खिलाड़ियों में शुमार रहे गैरी कास्पोरोव को शतरंज में हराया जा चुका है। यही नहीं इसके तर्ज पर मैट्रिक्स, आई रोबोट, टर्मिनेटर ,ब्लेड रनर जैसी सुपरहिट फिल्में

भी बनाई जा चुकी है। चीन तो एक कदम आगे बढ़कर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सिस्टम पर आधारित अगली पीढ़ी का मिसाइल भी विकसित कर रहा है। नियंतण्र आंकड़ों और तयों पर गौर करें तो इससे जुड़ा खुदरा नियंतण्र बाजार 2018 में जहां 2 बिलियन डॉलर का था वहीं वर्ष 2022 तक इसके 7.3 बिलियन तक बढ़ने की संभावना है। ऐसा इसलिए क्योंकि आने वाले समय में कंपनियां एआई टूल्स के लिए ज्यादा से ज्यादा निवेश करेगीं, जिससे **उपभोक्ताओ** को दी जाने वाली सेवा में विस्तार किया जा सके। इसके **अतिरिक्त** दुनियाभर में रोबोट आयात की दर 100,000 से बढ़कर 250,000 तक हो जाने का अनुमान है। अगर **उपभोक्ताओं** की बात करें तो 38 प्रतिशत उपभोक्ता मानते है कि एआई से उपभोक्ता सेवा में सुधार होगा। वर्तमान में 6 **प्रतिशत** कंपनियां एआई का प्रयोग डेटा खोज के लिए कर रही है और हेल्थकेयर क्षेत्र में इसके 6.6 बिलियन डॉलर तक बढ़ने का अनुमान है। विश्व बैंक की रोजगार संबंधी नवीनतम रिपोर्ट में यह चौंकाने वाली बात सामने आई है कि दुनिया के **अधिकतर** विकसित और विकासशील देशों में कामकाजी आबादी कम हो रही है क्योंकि मानव आधारित कार्यबल को तेजी से आगे बढ़ रहे रोबोट से चुनौती मिल रही है। **पिछले** दिनों जापानी सरकारी एजेंसी जापान विदेशी व्यापार संगठन (**जेईटीआरओ**) की तरफ से यह बात सामने आई कि सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) के साथ अन्य कई क्षेत्रों मसलन-हेल्थकेयर, **कृषि**, अनुसंधान और विकास और सेवा व वित्त आदि **में** भारी संख्या में नौकरियों को रोबोट या कृत्रिम बुद्धि द्वारा **हस्तांतरित** कर लिया जाएगा। मानव बुद्धि और कृत्रिम **बुद्धि** में सबसे बड़ा अंतर यह है कि मानव दिमाग एनालॉग होता है, इसके भीतर पुराने अनुभवों से अनुभव लेने, परिस्थिति के अनुकूल प्रतिक्रिया देने, विचारों से निपटने और अर्जित ज्ञान का उपयोग करने की क्षमता होती है और इसकी **बौद्धिक** ऊर्जा की क्षमता जहां 25 वाट होती है वहीं रोबोट मानवीय **व्यावहारों** की नकल भर है और इसे कुशल एजेंटों द्वारा डिजाइन और तैयार किया जाता है। इनकी ऊर्जा क्षमता केवल 2 वॉट की होती है। हालांकि यह बात दीगर है कि **तकनीकी** को एक अलग मुकाम पर ले जाने के मकसद से एआई धारणा को दुनिया के सामने रखा गया था, जो इंसानों की तरह सोच कर किसी समस्या का हल निकाल सके मगर कई दूसरे **वैज्ञानिकों** का मानना है कि तकनीकी में इस तरह का विकाम मशीन को सुपर इंटेलिजेंट बना सकता है जो आगे चलकर मानव अस्तित्व को खतरा पहुंचा सकता है।

दूसरी ओर कुछ अनुसंधानकर्ता यह मानते हैं कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस लर्निंग ही हमारा भविष्य है। हालांकि इससे होने वाले फायदों को नजरअंदाज नहीं **किया** जा सकता। सीरी, गूगल मैप, नेस्ट इको, जैसी मशीन लर्निंग तकनीक इसके उदाहरण हैं। तकनीकी विकास में इसकी अहम भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता **लेकिन** जरूरी है कि एआई के साथ-साथ मानव कौशल विकास और कुशलता प्रोन्नयन पर भी ध्यान केंद्रित किया जाए **ताकि** इंसानों को भी रोबोट के मुकाबले प्रतिस्पर्धात्मक रूप से तैयार किया जा सके। भले ही कृत्रिम बुद्धि को निर्देशों के **जरिये** इंसानी मुकाबले के लिए खड़ा किया जा रहा हो किंतु यह सच है कि बनावटी बुद्धि, वास्तविक बुद्धि को कभी चुनौती **नहीं** दिया जा सकेगा।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 29-07-19

Sweet Start

Not hiking FRP for sugarcane is welcome. Transparent pricing formula, freedom for farmers to sell to any mill is way ahead.

Editorial

The Narendra Modi government has done well not to hike the fair and remunerative price (FRP) for sugarcane in the ensuing 2019-20 crushing season from October. The FRP has been retained at the current level of Rs 275 per quintal, linked to a basic sugar recovery of 10 per cent from cane, despite Maharashtra state elections that are due in just over two months. The decision is clearly an acceptance of ground reality, wherein mills are struggling to pay even the existing FRP. As on July 15, Maharashtra mills had cane arrears of Rs 805.76 crore, against the total FRP payments of Rs 23,173.29 crore for the 2018-19 season. It is even worse in Uttar Pradesh, where out of the cane worth Rs 33,046.76 crore bought at the state government's "advised" price (SAP) of Rs 315-320 per quintal — almost equal to the Centre's FRP at an average sugar recovery of 11.48 per cent for this season — mills have paid only Rs 24,535.65 crore till July 25.

At the root of mounting cane dues is politics of a destructive kind. Fixing cane prices totally out of sync with sugar realisations benefits neither mills nor farmers. Mills are supposed to pay the FRP (or SAP) within 14 days of cane delivery. But that requires access to working capital. Banks normally extend cash credit up to 85 per cent of the value of sugar stocks. That, at present ex-factory prices of Rs 31.5 per kg and 11.5 per cent sugar recovery, works out to Rs 308 per quintal of cane. Moreover, mills can use only about 85 per cent of this borrowed money to fund cane purchases and the rest for meeting other working expenses. It means that mills today cannot afford to pay more than Rs 262 per quintal. Farmers are better off getting this price immediately rather than not being paid at all. Politicians may earn brownie points by announcing high cane prices. But how does it help, if these only lead to unpaid dues even at the end of the season.

Not hiking the FRP is a good start; so is the move to create a four million tonnes (mt) buffer stock on which the Centre will bear the interest and storage costs. Given record estimated closing stocks of 14.5 mt for September 30, this should at least help prices from falling further when the new crushing season begins. But the Modi government should go further and push states — at least UP, Maharashtra and now Karnataka, where the BJP is in power — to implement the Rangarajan Committee formula, of paying farmers 70 per cent of the total revenues of mills from sale of sugar and primary byproducts (molasses, bagasse and press mud) as cane price. A transparent pricing formula, combined with freedom for farmers to sell to any mill sans any cane area reservation, should be the path forward.

THE HINDU

Date: 29-07-19

Sexism in Parliament

India needs more women in legislatures to combat the likes of Azam Khan

Editorial

The triple talaq bill was passed in the Lok Sabha on July 25, silencing Opposition voices that the Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Bill, 2019 should not be pushed through in a hurry, and without scrutiny. But the dissent on the nitty-gritty of the bill was overshadowed by the sexist remarks made by Samajawadi Party MP Azam Khan, directed against Bharatiya Janata Party member Rama Devi who was in the Chair. Referring to an intervention by Minority Affairs Minister Mukhtar Abbas Naqvi, Mr. Khan quoted a couplet, "… tu idhar-udhar ki na baat kar (do not digress)." When Ms. Devi asked Mr. Khan to address the Chair, he made an "objectionable" statement, marking a new parliamentary low. The irony that this was said while the House was discussing an issue concerning women was not lost on Finance Minister Nirmala Sitharaman, who quipped: "Don't politicise an issue that affects women." Women and Child Development Minister Smriti Irani pointed out that Mr. Khan's comment was a "blot on all legislators including men". Mr. Khan, a veteran from the Uttar Pradesh Assembly but a first-time MP who is no stranger to controversy, was banned from campaigning for 72 hours in the recent Lok Sabha polls after his misogynist remarks against BJP candidate Jaya Prada. While Mr. Khan has been asked to apologise to the House, some women members have renewed the pitch for the passage of the women's reservation bill.

The 17th Lok Sabha has the highest number of women MPs, 78, comprising 14.39% of the House. This is higher than 2014 and a long way from the first election in 1951-52, when they made up only 5% of the House. The global average stands at 24.6%, and neighbours Bangladesh, Pakistan and Nepal have quotas for women in Parliament. In India, the women's reservation bill or the Constitution (108th) Amendment Bill to set aside one-third of seats in Parliament and State Assemblies for women was passed in the Rajya Sabha in March 2010. However, the Bill couldn't overcome odds and the opposition in the Lok Sabha and went into cold storage. Critics have cited several reasons behind the bill being thwarted, not least that the quota for women would be appropriated by powerful stand-ins. But this could hold true for men as well. The Bharatiya Janata Party, which has an overwhelming majority in the Lok Sabha (303 of 543 seats) and has rushed through more than a dozen bills in this session, must take the lead. Slogans such as 'Beti Bachao, Beti Padhao' will sound like mere lip-service if political parties don't speak out against gender prejudice. Women must have greater political representation in decision-making bodies as a first step towards changing chauvinistic mindsets, and Parliament needs to show the way.